संपादकीय जागरण

सोमवार, 9 अप्रैल, 2018 : वैशाख कृष्ण 9 वि. 2075

आसानी से सिर्फ धोखा मिल सकता है

गुमराह करने वाली राजनीति

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को उत्पीड़न और भेदभाव से बचाने वाले एससी-एसटी एक्ट पर सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों के बाद विभिन्न राजनीतिक दलों में खुद को दलित हितैषी बताने की जो होड़ मची है उससे यही अधिक स्पष्ट हो रहा है कि चिंता दलित हितों की कम, बल्कि आगामी लोकसभा चुनावों की ज्यादा की जा रही है। दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि ऐसा करते हुए छल-छद्म का सहारा लेने से भी नहीं बचा जा रहा है। विडंबना यह है कि यह काम राजनीतिक दलों के बड़े नेता भी करने में लगे हुए हैं। राहुल गांधी खुद और कांग्रेस को दलित हितैषी बताने की कोशिश कम कर रहे हैं और भाजपा एवं मोदी सरकार को दलित विरोधी बताने पर कुछ ज्यादा ही जोर दे रहे हैं। इस क्रम में वह यह कहने से भी नहीं चूके कि एससी-एसटी एक्ट को हटा दिया गया है। यह महज गलतबयानी ही नहीं, बल्कि देश की जनता को गुमराह करने वाला काम है। अब यदि खुद कांग्रेस अध्यक्ष इस तरह का काम करेंगे तो फिर अन्य नेताओं के आचरण के बारे में सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। राहुल गांधी दलित हित की चिंता में राजघाट पर उपवास करने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन यह चिंता छल-छद्म से करने का कोई मतलब नहीं।

एससी-एसटी एक्ट के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने जो दिशा-निर्देश दिए उसे लेकर वह अपना स्पष्टीकरण भी दे चुका है, लेकिन राहुल गांधी और ऐसे ही अन्य नेता स्थितियों को सही तरह समझने के बजाय भ्रम का माहौल बनाकर राजनीतिक रोटियां सेंकने में लगे हुए हैं। राहुल गांधी को एससी-एसटी एक्ट पर छल-छद्म का सहारा लेने के बजाय इस पर आत्मचिंतन करना चाहिए कि दलित समुदाय पार्टी से क्यों छिटक गया और क्या कारण रहा कि दलित हित के नाम पर कई राजनीतिक दल उभरकर सामने आ गए? निःसंदेह ऐसा इसीलिए हुआ, क्योंकि कांग्रेस ने लंबे समय तक सत्ता में रहने के बावजूद दलितों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए वैसा कुछ भी नहीं किया जो किया जाना चाहिए था। यदि दलित आज भी शोषित-वंचित हैं तो उसके लिए अगर कोई राजनीतिक दल सबसे अधिक जिम्मेदार और जवाबदेह है तो वह कांग्रेस ही है। कांग्रेस वास्तव में दलितों के प्रति कितनी चिंतित है, इसका पता इससे चलता है कि एससी-एसटी एक्ट पर सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों के बाद आयोजित भारत बंद के दौरान जिन दलों के बारे में संदेह है कि उन्होंने हिंसा भड़काने का काम किया उनमें कांग्रेस प्रमुख है। राहुल गांधी की तरह से बसपा प्रमुख मायावती भी मोदी सरकार को दलित विरोधी बताने के लिए सक्रिय हैं, लेकिन वह यह बताने के लिए तैयार नहीं कि 2007 में सत्ता में आते ही उन्होंने एससी-एसटी एक्ट के मामले में करीब-करीब वैसे ही निर्देश क्यों जारी किए थे जैसे सुप्रीम कोर्ट ने जारी किए? इन स्थितियों में दलित समाज के लिए भी यह आवश्यक हो जाता है कि वह चुनाव की चिंता में खुद को दलित हितैषी बताने वाले नेताओं की बातों पर ठोक-बजाकर ही भरोसा करे। इसी के साथ दलित समुदाय को इसके प्रति भी सचेत रहना होगा कि उनके बीच वैसे तत्व न सक्रिय होने पाएं जिनका एकमात्र उद्देश्य माहौल बिगाड़कर राजनीतिक उल्लू सीधा करना है।

राहत का इंतजार

वैसे तो हर साल ही किसानों को प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है, लेकिन इस बार मौसम का कहर उनके लिए अप्रत्याशित है। आंधी, बारिश और ओलों ने खड़ी फसल को गहरा नुकसान पहुंचाया है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गन्ना किसानों को खमियाजा भुगतना पड़ा तो अन्य जिलों में खरीफ की फसल को बहुत नुकसान हुआ है। देर से बोआई से गन्ना अभी खेत में ही रह गया था तो गेहूं की फसल कटने को थी। हालांकि राज्य सरकार ने फौरी राहत की व्यवस्था कर रखी है, लेकिन इसकी प्रक्रिया में देरी होना आम बात है। नुकसान के आकलन में ही स्थानीय प्रशासन का भेदभाव शुरू हो जाता है जिससे वास्तविक राहत पाने के लिए लंबा इंतजार करना पड़ता है। बाढ़ में किसानों को हुआ नुकसान इसका उदाहरण है। कई जिलों में अब तक मुआवजा नहीं मिल पाया है। बुंदेलखंड में तो किसानों को दोहरी मार झेलनी पड़ जाती है। सूखे से फसल हर साल प्रभावित होती ही है, बारिश, आंधी और ओले रही-सही उम्मीदों को भी खत्म कर देते हैं।

सरकार ने फौरी राहत की व्यवस्था कर रखी है, लेकिन इसकी प्रक्रिया में देरी होना आम बात है

सरकार ने किसानों की फसलों को होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए कई कदम उठाए हैं, लेकिन जागरूकता के अभाव में गरीब किसान उनका लाभ नहीं उठा पाते। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना ऐसी ही योजना है जो किसानों को फसलों के नुकसान की भरपाई की गारंटी देती है। राज्य सरकार ने भी नुकसान के अनुपात में राहत के लिए अनुदान तय कर रखा है। अहेतुक मदद के रूप में जनहानि होने पर परिवारीजन को चार लाख रुपये का, जबकि मकान क्षतिग्रस्त होने पर 95 हजार 100 रुपये, दुधारू और गैर दुधारू पशु की मौत पर क्रमशः 30 और 25 हजार तथा छोटे जानवरों के मरने पर तीन हजार रुपये की सहायता मिलती है।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या पं. नेहरू के जन्मदिन के बजाय गुरु गोविंद सिंह के बेटों की शहादत वाले दिन के मौके पर बाल दिवस मनाने की मांग सही है?

आज का सवाल

क्या नेपाली प्रधानमंत्री की भारत यात्रा से दोनों देशों के रिश्तों में आया ठहराव दूर होगा?

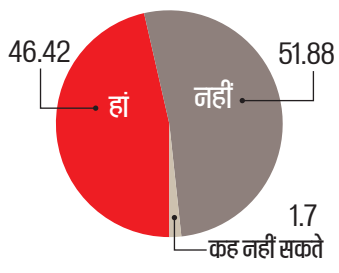

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर **POLL** लिखें, स्पेस देकर **Y, N** या **C** लिखकर 57272 पर भेजें
Y – हां, **N** – नहीं, **C** – कह नहीं सकते

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है। सभी आंकड़े प्रतिशत में।

संसद को चाहिए नए नियम

हृदयनारायण दीक्षित

दुनिया की सभी विधायी संस्थाओं की गुणवत्ता बढ़ी है, लेकिन भारतीय संसद ने निराश किया है। उसे इस पर अवश्य ही विचार करना चाहिए

प्रकृति नियम बंधन में है। ऋग्वेद में प्रकृति के संविधान को 'ऋत' कहा गया है। वैदिक समाज में मान्य इंद्र, वरुण, अग्नि, जल और सूर्य आदि देवता परम शक्तिशाली हैं, लेकिन वे भी ऋत विधान का अनुशासन मानते हैं। दर्शनशास्त्री डॉ. राधाकृष्णन की टिप्पणी है कि ईश्वर भी इन नियमों में हस्तक्षेप नहीं करता। भारत की प्रज्ञा ने देवताओं को भी विधान से नीचे रखा है, लेकिन इसी भारत में विधि बनाने वाली पवित्र संसद में घोर नियमविहीनता देखी जा रही है। विधि निर्माता स्वयं अपनी बनाई विधि और सदनों की कार्य संचालन नियमावली तोड़ रहे हैं। संसदीय व्यवस्था प्रश्नवाचक हो चुकी है। जनगणमन निराश है। दलतंत्र में कोई पश्चाताप या आत्मग्लानि नहीं है। गतिरोध के कारण लोकसभा में 127 घंटे व राज्यसभा में 120 घंटे काम नहीं हुआ। विनियोग विधेयक भी बिना चर्चा पारित हुआ है। संसदीय व्यवधान के नायक प्रसन्न हैं, लेकिन राष्ट्र सन्न है। दुनिया के सबसे बड़े जनतंत्र की विफलता आश्चर्यजनक है।

भारत का लोकजीवन प्राचीनकाल से ही लोकतंत्री था। लोकसभा के पूर्व महासचिव सुभाष कश्यप ने लिखा है, 'यहां वैदिक युग से ही गणतांत्रिक स्वरूप, प्रतिनिधिक विमर्श और स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं थीं। ऋग्वेद, अथर्ववेद में सभा समिति के उल्लेख हैं। ऐतरेय ब्राह्मण, पाणिनी की अष्टाध्यायी, कौटिल्य के अर्थशास्त्र व महाभारत में उत्तर वैदिक काल के गणतंत्रों का उल्लेख है।' डॉ. आंबेडकर ने भी संविधान सभा के अंतिम भाषण (25.11.1949) में ऐसा ही उल्लेख किया और कहा कि 'भारत से यह लोकतांत्रिक व्यवस्था मिट गई। लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए हम सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संवैधानिक रीतियों को दृढ़तापूर्वक अपनाएं, सविनय आंदोलन की रीति त्यागें। ये रीतियां अराजकता के अलावा और कुछ नहीं।' भारत के संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश संसदीय प्रणाली अपनाई। यही उचित भी था। ब्रिटिश संसदीय परंपरा में व्यवधान और हुल्लड़ नहीं होते। बीबीसी के अनुसार 'बीते सैकड़ों वर्ष से ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमंस को एक मिनट के लिए भी स्थगित नहीं किया गया है।' वहां ओह-ओह या शेम शेम कहना भी अभद्र माना जाता है। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया आदि की सभाओं में भी भारत जैसे अभद्र दृश्य नहीं होते। मूलभूत प्रश्न है कि ब्रिटिश संसद जैसी परंपरा अपनाकर भी हम भारत के लोग अपनी विधायी संस्थाओं को वैसा ही सुंदर स्वरूप क्यों नहीं दे पाते?

संविधान में संसद के प्रत्येक सदन को अपने कार्यसंचालन के लिए नियम बनाने की शक्ति है। यही शक्ति विधानमंडलों को भी मिली है। प्रत्येक सदन ने अपनी कार्य संचालन नियमावली बनाई है, लेकिन आश्चर्य है कि स्वयं अपने द्वारा बनाई गई नियमावली भी यहां पालनीय क्यों नहीं है? मूलभूत प्रश्न है कि शोर और बाधा डालकर हम कार्यपालिका को ज्यादा जवाबदेह बनाते हैं? या तथ्य और तर्क देकर बहस के माध्यम से हम प्रभावी भूमिका का निर्वहन करते हैं? स्वाभाविक ही सभाभवन में बहस और विमर्श का कोई विकल्प नहीं होता। व्यवधान का तो कतई कोई उपयोग नहीं, लेकिन विपक्ष को बहस प्रेय नहीं लगती। व्यवधान ही श्रेय लगते हैं। विपक्षी माननीय ध्यान दें -व्यवधान से हमेशा सत्तापक्ष को व्यावहारिक लाभ मिलता है। मंत्रीगण प्रश्नोत्तरों से बचते हैं। वे स्पष्टीकरण की जिम्मेदारी से बच जाते हैं। विपक्ष वैकल्पिक विचार नहीं रख पाता। इससे विपक्ष के साथ देश का भी नुकसान होता है।

अवधेश राजपूत

संसद व विधानमंडल सर्वोच्च जनप्रतिनिधि निकाय हैं। सभी सदस्यों के अपने विचार होते हैं और सबकी अपनी प्राथमिकताएं। यहां सब बोलने ही आते हैं श्रोता कोई नहीं होता। श्रोता भी बात काटने के लिए ही सुनता है। इसलिए बहस में उमस और गर्मी स्वाभाविक है, लेकिन बहस उमस के बाद आने वाली आंधी में संविधान तार-तार हो जाता है। 1968 तक संसद में होने वाले व्यवधान प्रायः नगण्य थे। इसके पहले संभवतः पहली दफा 1952 में प्रिवेंटिव डिटेंशन एमेंडमेंट विधेयक पर घोर व्यवधान हुआ था। 1963 में आधिकारिक भाषा विधेयक पर भी भारी व्यवधान हुआ, पर वे अपवाद थे, लेकिन अब व्यवधान संसदीय कार्यवाही का मुख्य हिस्सा हैं। प्रत्येक सत्र के बाद व्यवधान कर्मी सदस्यों की सूची प्रकाशित हो। जनता अपने प्रतिनिधियों का काम जांचे। सदनों की कार्यवाही पर करोड़ों का लोकधन खर्च होता है। जनहित पर बात नहीं होती, दलहित सर्वोपरिता है।

संसद का गौरवशाली इतिहास है। इसके पहले संविधान सभा की कार्यवाही 165 दिन चली थी। 17 सत्र हुए थे। लंबी तीखी बहसों के बावजूद व्यवधान नहीं हुए। पहली लोकसभा में पं. नेहरू थे तो डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी भी थे। पुरुषोत्तम दास टंडन, सेठ गोविंदास जैसे धीर पुरुष थे तो हरि विष्णु कामथ जैसे आलोचक भी थे। 1968 तक सदस्य धैर्य से सुनते थे। अध्यक्ष की अनुमति से बोलते थे। दुनिया की सभी विधायी संस्थाओं की गुणवत्ता बढ़ी है, लेकिन भारतीय संसद ने निराश किया है। यहां का शून्यकाल हंगामा है। पूर्व प्रधानमंत्री नरसिंह राव ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमंस के दौरे पर थे। उनसे पूछा गया कि आपके देश में यह शून्य काल क्या है? राव ने कहा कि यह वैश्विक संसदीय व्यवस्था में भारत का योगदान है। ब्रिटिश संसदीय प्रणाली में कदाचरण के आधार पर सदस्यों की बर्खास्तगी की भी प्रथा है। संसदविज्ञ अर्सकिन ने 'पार्लियामेंट्री प्रोसीजर एंड प्रैक्टिस' में 'भ्रष्टाचार के साथ ही अशोभनीय व्यवहार के कारण भी सदस्यों की बर्खास्तगी की प्रथा बताई है।' हम भी उसे क्यों नहीं अपना सकते?

संसदीय व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं। संसद अपनी प्रक्रिया की स्वामी है। संसदीय व्यवस्था को अग्नि स्नान की जरूरत है। संसद और विधानमंडलों के सत्र और सत्रों की अवधि बढ़ाई जानी चाहिए। संविधान सभा में प्रो. केटी शाह ने 'संसद को कम से कम छह माह चलाने का प्रस्ताव किया था। उन्होंने अध्यक्ष मावलंकर का विचार भी दिया था कि 'देश के प्रति न्याय के लिए जरूरी है कि सदन वर्ष में 7-8 माह से कम न बैठे।' संसदीय समितियों में शालीनता के साथ ढेर सारा काम होता है। उनकी कार्यवाही गुप्त रखने के बजाय सर्वजनिक करना प्रेरक होगा। कार्यस्थगन को अपवाद बनाया जा सकता है। प्रतिवर्ष दो या तीन विशेष सत्र बुलाए जा सकते हैं। इनमें विधि निर्माण और राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को ही प्रमुखता दी जा सकती है। विधि निर्माण के लिए अतिरिक्त समय आवंटन जरूरी है। दंड अंतिम विकल्प है। बाधा डालने के कृत्य संसदीय विशेषाधिकार का हनन हैं। संविधान के अनुच्छेद 102 में संसद व अनुच्छेद 191 में विधानमंडल के सदस्यों को सदन के अयोग्य घोषित करने के प्रावधान हैं। इनमें संसद द्वारा निर्मित विधि द्वारा अयोग्य घोषित सदस्य को अयोग्य माना गया है। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 में संशोधन करके बार-बार बाधा डालने वाले आचरणकर्ता को सूचीबद्ध किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने संसदीय व्यवस्था को संविधान का मूल ढांचा कहा है। इसी 'मूल' पर प्रहार करने वाले सदस्य सदन के अयोग्य क्यों नहीं हो सकते? राष्ट्र अपने प्रतिनिधियों को काम करते ही देखना चाहता है।

(लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

सत्ता में साधु संन्यासियों का क्या काम

राजकिशोर

साधु-संत हमारे लिए सम्माननीय हैं, लेकिन उनका काम सरकार चलाना या सरकारी सुविधाओं का उपभोग नहीं है

हमारे देश की राजनीति हास्यास्पद होने के बाद अब फूहड़ता के स्तर पर पहुंचती नजर आ रही है। जब उत्तर प्रदेश में एक योगी को मुख्यमंत्री बनाया गया तो इस पर आश्चर्य जरूर हुआ था, परंतु यह कोई अनहोनी घटना नहीं थी। आदित्यनाथ बहुत दिनों से राजनीति में हैं। 1998 में वह पहली बार लोकसभा के लिए चुने गए और उसके बाद लगातार चार बार चुनाव जीतकर सांसद बने। जब उन्हें मुख्यमंत्री पद के लिए चुना गया, उस समय भी वह सांसद ही थे, लेकिन मध्य प्रदेश सरकार ने पांच साधुओं को राज्यमंत्री का दर्जा देकर एक विचित्र काम किया है। इसके पहले साधुओं या साध्वियों को मंत्री तो बनाया गया है, लेकिन सरकार में शामिल किए बिना एक साथ पांच साधुओं को राज्यमंत्री का दर्जा दे देना एक नई बात जरूर है। जाहिर है, इन साधुओं को कुछ नए अधिकार मिल जाएंगे, लेकिन इनकी जिम्मेदारी में कोई विशेष वृद्धि नहीं होगी।

इस पर मध्य प्रदेश सरकार का कहना है कि साधुओं का सम्मान करने के लिए तथा प्रशासन में जन भागीदारी को बढ़ाने के लिए यह असाधारण कदम उठाया गया है। लेकिन तथ्य कुछ और ही कहते हैं। जिन पांच साधुओं को राज्यमंत्री का दर्जा दिया गया हैं, उनके नाम हैं नर्मदानंद महाराज, हरिहरानंद महाराज, कंप्यूटर बाबा, भय्यू जी महाराज एवं पंडित योगेंद्र महंत। इसकी घोषणा 31 मार्च को हुई। इसके पहले 28 मार्च को इंदौर में संत समाज की एक बैठक हुई थी जिनमें इन पांचों की प्रमुख भूमिका थी। बैठक में सरकार के इस दावे पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया कि राज्य के 45 जिलों में नर्मदा किनारे साढ़े छह करोड़ पौधे लगाए गए हैं। सरकार द्वारा यह दावा पिछले साल जुलाई में किया गया था। संतों का कहना था कि यह मामला धोखाधड़ी का है और इससे बहुत ही कम पौधे लगाए गए हैं। संतों ने सरकार के इस दावे को महाघोटाले की संज्ञा दी और फैसला किया कि हम नर्मदा किनारे घूम घूमकर पौधों की गिनती करेंगे। उन्होंने इस यात्रा को नर्मदा घोटाला रथ यात्रा का नाम दिया।

चूंकि इस यात्रा की घोषणा होते ही मुख्यमंत्री को लगा कि पूरे राज्य में नर्मदा के किनारे बहुत बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण की जिस योजना को सफल बताया जा रहा था, उसकी पोल खुलने ही वाली है। लिहाजा दो दिन बाद ही 31 मार्च को राज्य सरकार ने आदेश निकाला कि प्रदेश के विभिन्न चिन्हित क्षेत्रों में, विशेषकर नर्मदा किनारे के क्षेत्रों में वृक्षारोपण, जल संरक्षण तथा स्वच्छता के विषयों पर जन जागरूकता का अभियान निरंतर चलाने के लिए विशेष समिति गठित की गई है। राज्य सरकार ने इस समिति के पांच विशेष सदस्यों को राज्यमंत्री का दर्जा प्रदान किया है। इस तरह उन पांचों विद्रोही साधुओं को वे सभी सुख-सुविधाएं दे दी गईं जो सरकार के एक राज्यमंत्री को मिलती हैं।

कांग्रेस ने जब इन नियुक्तियों की आलोचना की तब भाजपा प्रवक्ता रजनीश अग्रवाल ने कहा कि कांग्रेस को संतों से संबंधित कोई भी मामला पसंद नहीं आता। वह हमेशा साधु-संतों का विरोध करती है। साधु-संतों को राज्यमंत्री का दर्जा इसलिए दिया गया है ताकि नर्मदा के संरक्षण कार्य में जनता की हिस्सेदारी सुनिश्चित की जा सके। भाजपा प्रवक्ता का तर्क समझ में आना मुश्किल है। सत्तारूढ़ पार्टी की नजर में क्या साधु संत ही जनता हैं? जिन साधुओं को राज्यमंत्री का दर्जा दिया गया है, क्या उनका ऐसा कोई इतिहास है कि नर्मदा के संरक्षण में उन्होंने कोई दिलचस्पी ली हो? मध्य प्रदेश सरकार साधुओं से इसलिए डर गई, क्योंकि वे उसे डराना चाहते थे। इसका सुबूत भी तुरंत मिल गया। जैसे ही पांचों साधुओं को राज्यमंत्री का दर्जा मिला, उन्होंने नर्मदा घोटला रथ यात्रा को स्थगित करने की घोषणा कर दी। यानी अब वे आराम से तमाम सुख-सुविधाओं के साथ तय करेंगे कि नर्मदा के किनार घोषित संख्या में वृक्षारोपण हुआ है या नहीं। यह बात समझ में आती है कि नर्मदा के संरक्षण में जन सहयोग प्राप्त किया जाए। सच तो यह है कि इस तरह के कार्य बिना जन सहयोग के संभव ही नहीं हैं, लेकिन जन सहयोग दोहरे स्तर पर हो सकता है। एक तो स्थानीय नगरपालिकाओं और पंचायतों को इस पुनीत कार्य में शामिल किया जाए। राज्य सरकार की अपेक्षा स्थानीय निकायों को ज्यादा पता होता है कि जमीनी स्थिति क्या है। कायदे से तो यह उन्हीं का कर्तव्य होना चाहिए। यह उनकी कार्यसूची में भी है। जन सहयोग लेने का दूसरा तरीका यह हो सकता है कि प्रत्येक जिले में जागरूक और सक्रिय नागरिकों की समितियां बनाई जाएं और उन्हें सरकारी योजनाओं पर अमल के पर्यवेक्षण का दायित्व सौंपा जाए। यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक है कि इन समितियों की रिपोर्ट पर कार्रवाई भी हो। अक्सर देखा जाता है कि नागरिक समितियां तो बन जाती हैं, परंतु उनकी कोई सुनवाई नहीं होती। ऐसे में उनका होना न होना बराबर हो जाता है।

बेशक साधु-संत हमारे लिए सम्माननीय हैं, लेकिन उनका काम सरकार चलाना या सरकारी सुख-सुविधाओं का उपभोग करना नहीं है। वे एक तरह से समाज के मार्गदर्शक होते हैं, लेकिन मार्गदर्शन का कार्य राज्यमंत्री की सुख-सुविधाएं प्राप्त किए बिना भी हो सकता है। बल्कि यह कहिए कि ये सुख-सुविधाएं प्राप्त किए बिना ही हो सकता है। समाज में साधु-संतों का विशेष स्थान है। वे जो उपदेश देते हैं, वे धार्मिक लोगों को मान्य होते हैं, लेकिन यह काम भी उपदेशक का ही है कि वह देखे कि लोग सिर्फ श्रद्धा व्यक्त करने आते हैं या कुछ सीखने और उस पर अमल करने के लिए भी आते हैं। समाज में पाखंड स्थापित करना या उसकी वृद्धि धर्म पुरुषों का काम नहीं है। जहां तक मध्य प्रदेश सरकार की बात है, उसका यह कदम निश्चय ही आलोचना के योग्य है। राजनीति में सांसदों, विधायकों और समर्थकों को लालच देकर अपनी ओर कर लेने की परंपरा बहुत दिनों से चली आई है। हाल के विधानसभा चुनावों में भाजपा ने सिर्फ इस परंपरा का लाभ उठाया है, लेकिन मंत्री पद का जाल साधुओं को लुभाने के लिए भी फेंका जा सकता है, यह अभी तक अकल्पनीय था। जनता से लिए जाने वाले टैक्स का पैसा इस तरह की राजनीतिक हरकतों वाले लोकलुभावनवाद में खर्च किया जाए तो यह सत्ता का भौंडा दुरुपयोग ही कहा जाएगा।

(लेखक वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

सम्यक दायित्व

दायित्व का अर्थ है-व्यक्तियों और अपने कार्यों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का पूर्णता से निर्वाह करना। जिसमें उत्तरदायित्व की भावना होती है, वह किसी के कहने की प्रतीक्षा नहीं करता, स्वेच्छा से कार्य अपने हाथ में लेता है। दायित्व का अर्थ है कि दूसरों के प्रति प्रतिबद्धता। दायित्व कर्तव्य से ऊपर है। कर्तव्य का निर्वाह औपचारिकतावश भी किया जाता है, जैसे-दफ्तर में अपने कर्तव्यों का निर्वाह। कर्तव्य एक हद तक बाध्यता है, बंधन है और इसके साथ व्यक्तिगत स्वार्थ भी जुड़ा होता है, किंतु दायित्व का निर्वाह तो भावनापूर्वक और अपनी अंतरात्मा को ऊंचा उठाकर ही किया जा सकता है।

दायित्व के प्रेमपूर्ण निर्वाह से ही कर्तव्यों का द्वंद्व समाप्त होता है। अगर आप में दायित्व की भावना है तो आपकी विश्वसनीयता बढ़ती जाएगी। इससे आपकी नेतृत्व-क्षमता का विकास भी होता है और सबको साथ लेकर चलने की कला आती है। आप भी चाहते हैं कि लोग आपको जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में देखें तो पहल करने की आदत डालें। लीक से हटकर चलने का साहस भी आपमें हो। जो भी काम करें, आनंदित भाव से करें। किसी की भी मदद के लिए हमेशा तत्पर रहें। दायित्वपूर्ण होना एक तरह का सेवा-भाव है। यह बड़े पुण्य का काम है, क्योंकि इससे लोगों के हृदय को असीम तृप्ति मिलती है। दायित्वों के सम्यक निर्वाह के लिए जरूरी है कि काम निष्ठापूर्वक किया जाए। निष्ठा का मतलब है-आश्वासनों तक सीमित न रहें, बल्कि करके दिखाने में आपको विश्वास हो।

दायित्व एक प्रकार का अनुशासन है, आंतरिक नियंत्रण है। जो कोई दायित्व नहीं लेना चाहता, वह अराजक है। दायित्व की भावना आपके चरित्र को बदलकर रख देगी। जो अपना आंतरिक नियंत्रण कर लेता है, उसके उच्चतर केंद्रों का जागरण अधिक सरलता से होता है और धीरे-धीरे वह स्वयं ही विराट शक्ति का केंद्र बन जाता है, जिसमें दायित्व की भावना होती है, वह सिर्फ स्वयं आगे नहीं बढ़ता, दूसरों को भी साथ चलने के लिए प्रेरित करता है। इसलिए दायित्व आपके उस व्यक्तित्व का निर्माण करता है जो आध्यात्मिकता की नींव है। दायित्व से पीछे हटने वाले जीवन में कामयाबी हासिल नहीं कर पाते हैं। दायित्व बोध वाले व्यक्ति समाज में सम्मान के पात्र बनते हैं।

कुमार राधारमण

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

संसदीय गरिमा और स्तर का सवाल

लोकतंत्र के लिए खतरे की घंटी शीर्षक से लिखे अपने लेख में संजय गुप्त ने संसदीय गरिमा और उसके कामकाजी स्तर को लेकर जो सवाल खड़े किए हैं, वे अकुलाहट पैदा कर रहे हैं। लोकतंत्र का मंदिर मानी जाने वाली देश की संसद ही जब अक्षम और असहाय हो जाएगी तो फिर लोकतंत्र कैसे जीवित रहेगा? आम जनता जिस अपेक्षा के साथ अपने जनप्रतिनिधियों को चुनकर देश की संसद और राज्यों की विधानसभाओं में भेजती है, क्या ये जनप्रतिनिधि उस जन-अपेक्षा के अनुरूप अपने विधायी कार्यों को अंजाम दे पाते हैं? शायद नहीं, क्योंकि यदि ऐसा होता तो संसद का हालिया बजट-सत्र व्यर्थ के हंगामे की भेंट नहीं चढ़ता। यह कैसी विडंबना है कि भारतीय संविधान में हर अराजकता के लिए सजा का प्रावधान है, लेकिन संसदीय अराजकता के लिए माननीयों को खुली छूट मिली हुई है, जिसका फायदा उठाकर ये न केवल संसद के महत्वपूर्ण विधायी कार्यों को अवरुद्ध करते हैं, अपितु जबर्दस्त हंगामा मचाकर संसद को बंधक भी बना लेते हैं। मजे की बात ये है कि देश के लिए नुकसानदेह इस अराजकता के बावजूद भी ये अपना वेतन और शाही भत्ते पाने के हकदार बने रहते हैं। यद्यपि इस बार सत्ता पक्ष ने संसद में विधायी कार्य न हो पाने की शर्मिंदगी से 23 दिन का वेतन न लेने की घोषणा जरूर की है, लेकिन संसदीय गरिमा के लिए ये त्याग ही काफी नहीं है। इसके लिए सत्ता पक्ष को ऐसे विधायी उपाय करने होंगे जिससे संसद में विरोध के नाम पर होने वाली अराजकता पर विराम लग सके। वरना देश-दुनिया में विख्यात भारत का लोकतंत्र बीमार हो जाएगा।

डॉ. विष्णु प्रकाश पाण्डेय, अलीगढ़

सलमान और मीडिया

जोधपुर कोर्ट में सलमान खान को जमानत मिलने के दौरान मीडिया का रुख काफी निराशाजनक रहा। इस घटना को एक राष्ट्रीय आपदा के रूप में प्रस्तुत किया गया। प्रश्न यह है कि क्या कानून सबके लिए एक है? अगर हां, तो मीडिया को इतनी हाय तौबा मचाने की क्या जरूरत थी? अगर किसी ने कोई अपराध किया है, तो उसे न्याय व्यवस्था के प्रावधान तहत सजा मिलेगी ही, इसमें आश्चर्य क्या? ऐसा ही नियम, हर देश में लागू होता है, फिर वो व्यक्ति कितना भी बड़ा या प्रभावशाली क्यों न हो? देश में कितने लोग हैं, जो न्याय पाने के लिए सालों तक भटकते रहते हैं। कई निर्दोष पैसे के अभाव में जेल में बंद हैं या छोटे छोटे अपराधों के लिए लम्बी सजा काट रहे हैं। जेलों की स्थिति अच्छी नहीं, न्याय व्यवस्था धीरे-धीरे काम करती है। जेल सुधार, पुलिस सुधार, न्यायिक व्यवस्था में सुधार जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे जस के तस पड़े हैं। मीडिया का यह वर्ग इन मुद्दों पर ऐसी ही सक्रियता क्यों नहीं दिखाता?

प्रभात कुमार, नई दिल्ली

आक्रामक रवैया

चीन आर्थिक गलियारे के तहत अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास रहा है। भूटान के अंतर्गत आने वाले डोकलाम क्षेत्र में सड़क निर्माण कर वह भारत को चुनौती दे रहा है। जब भारतीय सेना ने चीनी घुसपैठियों को खदेड़ा, तो वह भारत के खिलाफ जहर उगलने लगा। चीन में पाक की तरह ही भारत से युद्ध करने की हिमायत करने वालों की कमी नहीं है, लेकिन आज भारत चीन से किसी भी मामले में कम नहीं है। चीन के बारे में भारत शांति बनाए रखने की नीति अपना रहा है। भारत को अपनी स्थिति बदलने की जरूरत है। हमें चीन और पाक से होशियार रहना होगा। अगर भारत पाक और चीन के प्रति आक्रामक रवैया नहीं अपनाता, तो उसे अपनी ही जमीन से हाथ धोना पड़ सकता है।

ghulamghaush0786@gmail.com

न्याय की जंग

देश में न्यायिक प्रक्रिया सबसे जटिल है। अक्सर लोगों का जीवन चक्र खत्म हो जाता है, लेकिन न्यायिक चक्र खत्म नहीं होता है। हाल ही में जब सलमान खान को काले हिरन के मामले में 20 साल बाद सजा हुई तो ऐसा लगा कि देश में सबके लिए न्याय एक समान है। लोगों को लगने लगा था कि कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो अगर उसने गलती की है तो सजा जरूर मिलेगी, लेकिन जब दूसरे दिन ही जमानत मिल जाती है तो यह उम्मीद टूट सी जाती है। वहीं दूसरी ओर यही सजा किसी आम आदमी को मिलती तो शायद उसे जमात मिलने में कई साल लग सकते थे। जब सलमान खान के वकील ने कहा कि उन्होंने लोकहित में बहुत कार्य किया है इसलिए उन्हें जल्द से जल्द जमानत दे दी जाए तो इसका मतलब यही निकलता है कि अभी भी कानून के समक्ष अमीर और गरीब का फर्क किया जाता है। सवाल तो मीडिया पर भी उठता है कि उसने सलमान को किस रूप में पेश किया। दो दिन से ऐसा लग रहा था की मीडिया के पास इससे बड़ा कोई मुद्दा नहीं है। लोग इसके अलावा भी कुछ जानना चाहते हैं। देश में अभी भी करोड़ो लोग हैं जिन्हें न्याय का इंतजार है।

नीरज कुमार झा, दिल्ली विवि

फायदे नुकसान का खेल

आइपीएल सीजन 11 की शुरुआत हो चुकी है, जिससे बच्चों, युवाओं से लेकर बुजुर्गों में भी उत्साह देखने को मिल रहा है। आइपीएल के कुछ फायदे हैं तो वहीं इसके नुकसान भी हैं। एक तरफ तो यह लोगों में खुशी की लहर लेकर आता है तो साथ ही नए युवाओं को अपनी प्रतिभा दिखाने का भी मौका देता है। वहीं दूसरी ओर कुछ गलत लोग भी सक्रिय हो जाते हैं, जो देशभर में सट्टे के कारोबार में जुट जाते हैं।

vijendrasinghsary32@gmail.com

ट्वीट-ट्वीट

टेबिल टेनिस में पहला स्वर्ण पदक जीतना बेहद खास है। उसमें भी सिंगापुर को हराना भारतीय टीम की बड़ी उपलब्धि है। सभी खिलाड़ियों ने शानदार प्रदर्शन किया।

बोरिया मजूमदार@BoriaMajumdar

हे मीडिया मुगलों! जमानत मिलने के बाद आपका काबिल लड़का घर पहुंच गया है तो अब बाहर जाकर राष्ट्रमंडल खेलों में देश का नाम कर रहीं हमारी इन बच्चियों पर भी कुछ कैमरा-कृपा हो जाए।

कुमार विश्वास@DrKumarVishwas

एंटीबायोटिक प्रतिरोध आज दुनिया भर में सेहत के मोर्चे पर सबसे ब